क्या वैश्वीकरण का मानवीय चेहरा संभव है?

सुनील
राष्ट्रीय महामंत्री, समाजवादी जनपरिषद
द्वारा लखनऊ विश्वविद्यालय में अर्थ और अमिट द्वारा आयोजित
किशन पटनायक स्मृति व्याख्यान 17 अक्टूबर 20006

समाजवादी जनपरिषद

http://samatavadi.wordpress.com/

द्वारा प्रकाशित

प्रतुतीकरण

www.cafehindi.com

क्या वैश्वीकरण का मानवीय चेहरा संभव है ?

(सुनील , राष्ट्रीय महामंत्री , समाजवादी जनपरिषद द्वारा लखनऊ विश्वविद्यालय में ‘अर्थ’ और ‘अमिट’ द्वारा आयोजित किशन पटनायक स्मृति व्याख्यान , १७ अक्टूबर २००६)

साथी किशन पटनायक आज हमारे बीच नहीं हैं । उनके निधन के दो वर्ष हो चुके हैं । लेकिन वह भारत के उन गिने - चुने चिंतकों में से थे , जिन्होंने वैश्वीकरण की आंधी और चकाचौंध से अप्रभावित रहकर इसके पीछे की ताकतों और इसके खतरों को शुरु से पहचान लिया था । बड़ी प्रखरता से उनका विश्लेषण करते हुए , अंतर्दृष्टि और दूरदर्शिता का परिचय देते हुए , इसे उन्होंने निरंतर अपने चिंतन , विमर्श और कर्म का हिस्सा बनाया । इसलिए उनको स्मरण व नमन करते हुए ‘ वैश्वीकरण और उसके मानवीय चेहरे ‘ की इस चर्चा को हम शुरु करते हैं ।

‘वैश्वीकरण’ उस विश्वव्यापी प्रवृत्ति का नाम है , जिसने पिछले कुछ वर्षों से पूरी दुनिया के जनजीवन को प्रभावित किया है और एक खास दिशा में मोड़ा है । भूमंडलीकरण , जगतीकरण , उदारीकरण , आर्थिक सुधार , नई आर्थिक नीति आदि इसके कई नाम हैं।आज इसकी आंच सब महसूस कर रहे हैं और यह पूरी दुनिया में चर्चा , बहस , विवादों तथा संघर्षों का केन्द्र बन चुकी है। इसके गुण - दोषों , लाभ - हानि तथा पक्ष -

विपक्ष की लगातार मीमांसा चलती रहती है । वैश्वीकरण की यह प्रवृत्ति इतनी व्यापक है और इतनी ज्यादा हावी हो चुकी है कि इसके दुष्प्रभावों का अहसास होते हुए भी कई लोग यह कहने लगे हैं कि (१) अब वापस पीछे जाना संभव नहीं है और वैश्वीकरण का कोई विकल्प नहीं है(There is no alternative या TINA) तथा (२) वैश्वीकरण की व्यवस्था को ही ज्यादा बेहतर , ज्यादा मानवीय बनाया जाए । ऐसे लोग ही 'वैश्वीकरण के मानवीय चेहरे ' की बात और तलाश करते हैं । वे वैश्वीकरण के मौजूदा स्वरूप की आलोचना करते हैं , किंतु इसमें बुनियादी परिवर्तन के स्थान पर इसमें सुधार लाने की बात करते हैं ।

वैश्वीकरण के ऐसे आलोचकों की श्रेणी में कई लोग हैं । विश्व बैंक , विश्व स्वास्थ्य संगठन , UNDP जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ वैश्वीकरण के फायदों और दुष्प्रभावों दोनों को गिनाती हैं । विश्व विकास रपट , विश्व स्वास्थ्य रपट , आदि में यह तो मंजूर किया जाता है कि वैश्वीकरण के लाभों का समान बँटवारा नहीं हो रहा है और काफी लोग इस से बाहर रह जाते हैं , लेकिन इसका इलाज यही है कि वैश्वीकरण को ज्यादा भागीदारी वाला (Participatory) बनाया जाए , तथा सामाजिक सुरक्षा व्यवस्थाओं (safety nets) को ज्यादा व्यापक बनाया जाए । वैश्वीकरण की मूल प्रवृत्तियों और मूल विचारधारा में कोई दोष वे नहीं देखते हैं।

भारतीय मूल के अमरीका निवासी नोबल पुरस्कार अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन को भी इस श्रेणी में रखा जा सकता है । वे वैश्वीकरण और मुक्त व्यापार का विरोध नहीं करते , लेकिन इस बात पर बहुत जोर देते हैं कि शिक्षा , स्वास्थ्य आदि पर सरकार को काफी ज्यादा खर्च करना चाहिए । यह ‘ चाहिए ‘ कैसे आर्थिक - राजनैतिक रूप से संभव होगा , यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है , जिस पर सेन साहब ज्यादा बात नहीं करते हैं । अमर्त्य सेन प्रारंभ में एक वामपंथी अर्थशास्त्री माने जाते थे। लेकिन इधर वैश्वीकरण संबंधी फिजूल की बहसों में वे नहीं पड़ते । इसीलिए भी शायद उन्हें नोबल पुरस्कार का पात्र माना गया ।

वैश्वीकरण की नीतियों के एक अन्य प्रमुख आलोचक के रूप में एक और नोबल पुरस्कार प्राप्त अर्थशास्त्री जोसेफ स्टिगलिट्ज़ भी उभर कर आये हैं। कुछ समय पहले उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की नीतियों के विरोध में उससे इस्तीफा दे दिया । और ‘ Globalisation and Its Discontents ‘ नामक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखकर हम सबका दिल खुश कर दिया । हाल ही में उन्होंने एक किताब और लिखी है - ‘ Making Globalisation Work ‘।गत २९ सितम्बर को उनका एक साक्षात्कार ‘ हिन्दू ‘ अखबार में प्रकाशित हुआ है ,जिससे उनके विचारों की एक झाँकी मिलती है । इस साक्षात्कार में वे वैश्वीकरण की आलोचना तो करते हैं , लेकिन यह भी कहते हैं

कि -

” यदि वैश्वीकरण का प्रबंध ठीक से किया जाए तो उसमें महान संभावनाएं छिपी हैं । किंतु यह तभी होगा , जब जीतने वाले हारने वालों के साथ हिस्सा-बँटवारा करें । “

यानी वैश्वीकरण के इस खेल में कुछ जीतने वाले और कुछ हारने वाले तो रहेंगे । यह हिस्सा-बँटवारा कैसे संभव होगा , यह ठीक से ‘प्रबंध’ कैसे होगा - यह एक बड़ा राजनैतिक सवाल है । स्टिगलिट्ज़ ‘स्केन्डिनेवियन(स्वीडन-नार्वे) मॉडल’ की बात करते हैं , जिसका मतलब है शिक्षा , अनुसंधान और तकनालाजी में भारी निवेश तथा एक मजबूत सामाजिक सुरक्षा का जाल। इसका मतलब यह भी है कि सरकार को आय पर प्रगतिशील दरों से भारी कर लगाना पड़ेगा । स्टिगलिट्ज़ पूर्वी एशियाई देशों- जापान , सिंगापुर , ताईवान , दक्षिण कोरिया और अब चीन- की भी इस बात के लिए तारीफ़ करते हैं कि उन्होंने ज्ञान और तकनालाजी की खाई को पाटने के लिए कदम उठाए तथा शिक्षा व बुनियादी ढ़ांचे पर भारी मात्रा में निवेश किया । तो वैश्वीकरण को सबके लिए लाभकारी और मानवीय बनाने के लिए स्टिगलिट्ज़ के मॊडल ये देश ही हैं ।

वैश्वीकरण का मूल मंत्र है ‘मुक्त बाजार’ । यदि बाजार की शक्तियों को खुलकर काम करने दिया जाए , उसमें सरकार का दखल व नियंत्रण न हो (क्योंकि उनसे विकृतियाँ पैदा होती हैं

), तो अर्थव्यवस्था का विकास होगा और ‘अंतत:’ सबको उस विकास का लाभ मिलेगा । वैश्वीकरण के बारे में यह विश्वास (या कहें अंधविश्वास) अर्थशास्त्र के दो पुराने सिद्धान्तों पर आधारित हैं ।एक तो रिकार्डो का व्यापार का तुलनात्मक लाभ सिद्धांत , जो कहता है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से दोनों पक्षों को लाभ होता है ।दूसरा , विकास का रिसाव सिद्धांत (Trickle Down Theory) , जो कहता है कि पहले कुछ देशों और कुछ व्यक्तियों का विकास होगा । फिर धीरे-धीरे इस विकास के लाभ रिसकर सब तक पहुंच जाएंगे । इसीलिए हमारे शासक आम जनता को कहते हैं कि धीरज रखो , विकास और समृद्धि का रिसाव सब तक पहुँचेगा । यदि अभी देश में बेरोजगारी फैल रही है , कई हिस्सों में गरीबी व भुखमरी है , किसान आत्महत्या कर रहे हैं, तो कोई चिंता की बात नहीं है। यह संक्रमण काल है , थोड़े वक्त की समस्या है , फिर सब ठीक हो जाएगा । दिक्कत यह है कि देश के करोड़ों लोगों को यह समझाईश पिछले पचास सालों से दी जा रही है । वैश्वीकरण के दौर में लोगों के कष्ट और ये उपदेश दोनों बढ़ गए हैं ।तो वस्तुस्थिति क्या है ?

मुक्त बाजार की यह वकालत कोई नई नहीं है । पूंजीवाद के विकास के साथ ही मुक्त व्यापार या Laisez Faire का विचार स्थापित किया गया । मार्क्स , कीन्स , गांधी , लोहिया जैसे अनेक विचारकों ने इसे चुनौती दी । लेकिन अब सोवियत संघ

के पतन , चीन द्वारा साम्यवाद का रास्ता छोड़कर पूंजीवाद की राह पकड़ने तथा भारत जैसे देशों में समाजवादी आंदोलन के बिखराव के बाद इसे चुनौती देने वाला कोई नहीं रहा । वैश्वीकरण क यह दौर वास्तव में उन्मुक्त बाजारवाद का दौर है । मानव जीवन के हर क्षेत्र को बाजारवाद के आगोश में लिया जा रहा है , आंका जा रहा है , ढाला जा रहा है । इस उन्मुक्त बाजारवाद के शिकार हुए कुछ लोगों पर एक नज़र डालना उपयुक्त होगा ।

वैश्वीकरण का सबसे बड़ा शिकार बने हैं भारत के किसान । किसानों की लगातार आत्महत्याएं, आखिरकार, हजारों किसानों की बलि चढ़ जाने के बाद , हमारे राष्ट्रीय विमर्श का बनी हैं । प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को भी पिछली जुलाई में विदर्भ का दौरा करना पड़ा। केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों ने किसानों के लिए पैकेजों की घोषणाएं भी कीं ।लेकिन आत्महत्याओं का सिलसिला नहीं थम रहा है ! प्रधानमंत्री वहाँ विधवाओं के आंसू पोंछ कर आए और ३७५० करोड़ रुपये के पैकेज की घोषणा करके आए , उसके बाद भी आत्महत्याएं रुकने या कम होने की बजाय बढ़ गई ।अभी पिछले ६ तथा ७ अक्टूबर को मात्र दो दिन में विदर्भ में नौ किसानों की आत्महत्याएं हुईं । प्रधानमंत्री के दौरे के बाद ३६० से अधिक किसान खुदकुशी कर चुके हैं ।

किसानों की आत्महत्याओं के पीछे दरअसल किसानी-खेती का

अभूतपूर्व संकट है । वैसे तो किसान और गांव हमेशा से शोषण व उपेक्षा के शिकार रहे हैं । किंतु देश की आजादी के बाद पहली बार ऐसा मौका आया है कि वे हजारों की संख्या में खुदकुशी कर रहे हैं।आत्महत्या एक व्यक्ति के जीवन का आखिरी अतिवादी कदम है जो वह तब उठाता है जब उसे जीवन में उम्मीद की कोई किरण दिखाई नहीं देती । यदि हजारों किसान आत्महत्या कर रहे हैं , इसका मतलब है कि लाखों -करोड़ों किसान इस संकट में गले तक फंसे होंगे ।

किसानों की ये आत्महत्याएं उस आन्ध्रप्रदेश में शुरु हुई , जहाँ का मुख्यमंत्री चन्द्रबाबू नायडू इस देश में विश्व बैंक का सबसे चहेता मुख्यमंत्री था ,जो स्वयं को मुख्यमंत्री कहने के बजाय सीईओ कहना पसंद करता था , तथा जिसकी तारीफ करते क्लिन्टन से लेकर हमारा मीडिया तक अघाता नहीं था । बाद में ये आत्महत्याएं अन्य 'प्रगतिशील राज्यों' - कर्नाटक , महाराष्ट्र , गुजरात , केरल व पंजाब में भी फैल गई । इसमें मार्के की बात यह है कि देश के पिछड़े व गरीब माने जाने वाले राज्यों से आत्महत्याओं की खबरें नहीं आयीं ।उन राज्यों में ज्यादा आत्महत्याएं हुई , जहाँ आर्थिक सुधार ज्यादा तेजी से लागू हुए, जहाँ की खेती ज्यादा उन्नत मानी जाती थी और जहाँ खेती में बाजार की घुसपेठ ज्यादा थी । मुक्त बाजार और आत्महत्याओं का एक सीधा संबंध दिखाई देता है

खेती - किसानी के इस व्यापक तथा गहरे संकट के सन्दर्भ में

सरकार की घोषणाएं व पैकेज इसलिए बेकार साबित हो रहे हैं कि वे किसानों की मुसीबत की असली जड़ में नहीं जाते हैं ।असली बात यह है कि भारत का किसान - बढ़ती लागत और उपज के घटते (या पर्याप्त न बढ़ते) दाम - चक्की के इन दो पाटों के बीच बुरी तरह पिस रहा है । खाद , बिजली , डीजल , पानी सबकी दरें बढ़ रहीं हैं , क्योंकि विश्व बैंक , अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष , वैश्वीकरण - समर्थक नव-उदारवादी अर्थशास्त्री , सबका कहना है कि सरकार को किसानों को अनुदान नहीं देना चाहिए , पूरी 'लागत वसूली' करना चाहिए तथा बाजार में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । दूसरी ओर , विश्व व्यापार संगठन की नई व्यवस्था के तहत , भारत की सरहदें सस्ते आयातों के लिए पूरी तरह खोलने के बाद , विदेशों से भारी अनुदान युक्त माल के आयात की बाढ़ आ गयी है , जिसने किसान की उपज के दाम लागत के अनुरूप बढ़ने नहीं दिए । वैश्वीकरण की नई विचारधारा के अनुरूप अब सरकार किसान को पर्याप्त समर्थन - मूल्य प्रदान करने की जिम्मेदारी से भी हाथ खींचना चाहती है तथा खीच रही है । नतीजे में , देश के किसानों को भारी घाटा हो रहा है । वे करजे में डूब रहे हैं । थोड़ी भी फसल बिगड़ जाए , तो उनके सामने आत्महत्या के अलावा कोई चारा दिखाई नहीं देता । संकट के इस बुनियादी कारण को दूर किए बगैर सरकार की कोई भी घोषणाएं बेमानी हैं , उनसे कुछ विशेष हासिल नहीं होने वाला है । लेकिन यह सरकार और यह प्रधानमंत्री इस

संकट का हल भी नहीं कर सकते , क्योंकि वैश्वीकरण की इस नई व्यवस्था को भारत में लाने वाले और उसके खास झंडाबरदार तो वे ही हैं । कृषि संकट के जो समाधान वे बता रहे हैं , जैसे दूसरी हरित क्रांति , जैव तकनालाजी , जीन-परिवर्तित बीज , विपणन और खाद्य प्रसंस्करण में विदेशी कंपनियों को बढ़ावा देना आदि , इससे संकट हल होगा नहीं , और ज्यादा गहराएगा ।

आत्महत्या वाले इलाकों के लिए भारत सरकार के पैकेज का एक प्रमुख हिस्सा किसानों के लिए बैंक ऋणों में बढ़ोतरी है । लेकिन पहले इस सवाल का जवाब खोजना होगा कि बैंक ऋणों में कमी कैसे हुई और किसान सहूकारों के चंगुल में कैसे फंसे ! नई आर्थिक नीति के पहले भारतीय बैंकों के कुल ऋण का १८ प्रतिशत तक कृषि को मिलता था । अब वह घट कर १० प्रतिशत हो गया है । इसका कारण साफ है । उदारीकरण के नए माहौल में हर बैंक पर दबाव है कि वह अपने मुनाफे को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाए तथा डूबत खाते के ऋणों (NPAs) को कम करे । किसानों को छोटे - छोटे ऋण देने में ज्यादा झंझट है , प्रशासनिक खर्चे ज्यादा हैं तथा वसूली ज्यादा मुश्किल है । घाटे की खेती के कारण किसानों की हालत भी खराब हो रही है । इसलिए बैंक अब किसानों को कर्ज देने में कतराते हैं । किसान क्रेडिट कार्ड के प्रचार-प्रसार के बावजूद असलियत यही है ।

मजबूरन किसान को निजी सहूकारों की शरण में जाना पड़ता है । तो यह एक दुष्चक्र बन गया है , जिसे वैश्वीकरण की नीतियों ने पैदा किया है । भारत सरकार की नई घोषणाओं से यह दुष्चक्र टूटेगा नहीं । ज्यादा संभावना यही है कि कृषि - ऋण में बढ़ोतरी के नाम पर किसानों के बजाय बड़े-बड़े फार्म हाउस के मालिकों तथा कृषि - क्षेत्र में कूद रही कंपनियों को ज्यादातर बैंक ऋण दिए जाएंगे ।

एक तरफ , भारत सरकार अपने किसानों को किसी प्रकार की सुरक्षा न देने की नीति पर चल रही है , दूसरी तरफ दुनिया के अमीर देश अपने कृषि-क्षेत्र को भारी अनुदान दे रहे हैं । विश्व-व्यापार संगठन के तमाम नियम - कानून व समझौतों के बावजूद पिछले दस वर्षों में उनके कृषि अनुदान कम नहीं हुए , बढ़ते गए हैं । इस समय वे एक वर्ष में करीब ३२१ अरब डॉलर क विशाल अनुदान अपने कृषि - क्षेत्र को दे रहे हैं ।इसके माध्यम से वे पूरी दुनिया की खेती , खाद्य-आपूर्ति , कच्चे माल आपूर्ति , राजनीति व कूट्नीति पर अपनी कंपनियों का व अपना वर्चस्व तथा नियंत्रण कायम करके रखते हैं । वैश्वीकरण की विश्व-व्यवस्था कितनी दुरंगी , पाखण्डी , अन्यायपूर्ण और विषमतापूर्ण है , इसका सबसे बढ़िया उदाहरण कृषि - क्षेत्र ही है ।

इसलिए भारत के किसानों की आत्महत्याएं कोई संयोग या

तात्कालिक दुर्घटना नहीं है , यह नई व्यवस्था का एक अनिवार्य हिस्सा है । यदि भूमि हदबन्दी कानूनों में चल रहे संशोधनों , कन्ट्रैक्ट खेती के प्रावधानों और कंपनियों के खेती में प्रवेश को साधारण किसानों के इस संकट के साथ मिलाकर देखें , तो योजना साफ हो जाएगी । योजना यह है कि भारत के किसानों के हाथ से खेती निकलकर कंपनियों के हाथ में आ जाए । किसानों की जमीन बिकेगी या नीलाम होगी (बैंक - ऋण वसूली का काम तहसीलदारों व राजस्व अधिकारियों को सौंपना इसी प्रक्रिया का हिस्सा है , आगे चलकर निजी ठेकेदारों को वसूली के ठेके दिए जाएंगे और ऋण वसूली का भी एक बाजार बनेगा) और वे नगरों तथा महानगरों में मजदूर व झुग्गीवासी बनकर आते जाएंगे । यूरोप - अमरीका में यह प्रक्रिया पहले हो चुकी है , लेकिन वे परिस्थितियाँ अलग थीं ।वहाँ की संख्या भी कम थी और तब पूरी दुनिया को लूटने , कब्जा करने व उस पर आधारित औद्योगीकरण का दौर वहाँ चल रहा था । खेती से बेदखल किसान उसमें खप गए । लेकिन भारत की विशाल ग्रामीण आबादी कहाँ जाएगी और कहाँ खपेगी - यह एक विशाल सवाल हमारे सामने खड़ा है ।

भारत की खेती का अभूतपूर्व संकट और भारत के किसानों का विनाश वैश्वीकरण का एक दानवी चेहरा है । इस चेहरे को कितना भी लीपा-पोता जाए , ढ़का जाए या मुखौटा लगाया जाए , इसे मानवीय चेहरा नहीं बनाया जा सकता ।

वैश्वीकरण की एक उपलब्धि के तौर पर यह प्रचारित किया जाता है कि भारत की विकास दर ७ - ८ प्रतिशत तक पहुँच गयी है , ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में इसे नौ व दस प्रतिशत तक पहुंचाया जाएगा I लेकिन यह विकास - दर बहुत भ्रामक है Iसबसे बड़ी बात तो यह है कि यह ' रोजगार रहित विकास ' (Jobless growth) है I देश में बेरोजगारी जबरदस्त बढ़ती जा रही है I यह बेरोजगारी सर्वव्यापी है , किंतु भारत के ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में सबसे ज्यादा है , जहाँ से लाखों - करोड़ों लोग रोजगार की तलाश में पलायन करते हैं I वैसे तो विशाल बेरोजगारी भारत के आधुनिक विकास मॉडल में अंतर्निहित है , किंतु वैश्वीकरण के दौर में इस बेरोजगारी में भारी बढ़ोत्तरी के दो प्रमुख कारण हैं : -

(1) खुले व सस्ते आयात के कारण तथा सरकार की नई नीतियों के कारण देश के बहुत सारे छोटे - बड़े , निजी - सरकारी , शहरी - ग्रामीण उद्योग खतम हो गए हैं तथा खेती भी घाटे में जा रही है I जो नए उद्योग या कारोबार उनकी जगह ले रहे हैं , उनमें इस विशाल बेरोजगार फौज को खपाने की क्षमता नहीं है I आखिर , जिस सूचना तक्नालाजी और BPO सेवाओं का इतना हल्ला है , गुड़गाँव और बंगलौर की इतनी चर्चा है , उनमें अधिकतम पाँच - दस लाख से ज्यादा रोजगार नहीं मिल सकता I

(2) नए माहौल में , अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में टिकने के लिए , प्रत्येक कंपनी या उद्योगपति तेजी से मशीनीकरण , स्वचालन और कम्प्यूटरीकरण की ओर जा रहे हैं तथा मजदूरों - कर्मचारियों की छंटनी कर रहे हैं I सरकारी उपक्रम भी चाहे वह रेलवे हो , SAIL हो , BCCL हो या बैंक , इसी नीति पर चल रहे हैं I इस काम के लिए सरकार उन्हे मदद , अनुदान तथा छूट भी देती है I भारत के श्रम - कानूनों को बदलना तथा ' चाहे जब लगाओ - भगाओ ' (Hire and Fire) की छूट देना आर्थिक सुधारों के नए दौर (Second Generation of Reforms) का प्रमुख अजेण्डा है I

नतीजा यह हो रहा है कि भारत के गांवों और शहरों दोनों में बेरोजगारों की भयानक समस्या खड़ी हो गयी है I सरकारी उपक्रमों में नई भर्ती बन्द हो गयी है , सरकारी तथा निजी क्षेत्र दोनों में अब स्थायी श्रमिक या कर्मचारी रखने के बजाय काम ठेके पर दिए जा रहे हैं जहाँ पर मजदूर बहुत कम मजदूरी में तथा बहुत खराब हालातों में काम करते हैं , काम की सुरक्षा खतम होती जा रही है , संगठित क्षेत्र का स्थान असंगठित क्षेत्र लेता जा रहा है तथा मजदूरों का शोषण अभूतपूर्व ऊँचाइयों पर पहुंच गया है Iइस मामले में कुछ संघर्ष करने वाला मजदूर आंदोलन भी वैश्वीकरण के पहले झटके में ही बिखर गया है और स्वयं लस्त-पस्त है I मजदूर आंदोलन के नाम पर सिर्फ सफेदपोश कर्मचारियों (बैंक , बीमा , रेलवे आदि) के संगठन

बचे हैं, जिन्हें सिर्फ अपने वेतन - भत्ते और पेंशन की चिंता है और जो स्वयं अपने उपक्रमों के निजीकरण व छंटनी को भी रोक पाने में असफल साबित हो रहे हैं ।

तो वैश्वीकरण का यह एक और चेहरा है । मजदूरों की छंटनी , गिरती मजदूरी , बढ़ता शोषण , बदतर होती कार्यदशाएं , खतम होता मजदूर आंदोलन , बुनकरों की आत्महत्याएं , बढ़ती बेरोजगारी । यह भी एक दानवी चेहरा है ।रोजगार गारंटी कानून जैसे उपायों से इसमें तात्कालिक राहत मिल सकती है , लेकिन बुनियादी स्थिति नहीं बदलती ।जैसा कि ऊपर कहा गया है यह वैश्वीकरण की व्यवस्था की मांग है और उसका तार्किक परिणाम है ।

यदि विकास की दर ८ - ९ प्रतिशत भी हो जाती है , किंतु यह विकास रोजगार शून्य रहता है , यानी इस विकास के साथ बेरोजगारी कम होने के बजाय बढ़ रही है , तो इसका मतलब है कि यह विकास ज्यादा से ज्यादा लोगों को बहिष्कृत कर रहा है और इस विकास के लाभ थोड़े से लोगों में केन्द्रित हो रहे हैं । ये विषमताएं (वर्ग , जाति , स्त्री - पुरुष , क्षेत्रीय , गांव - शहर की , अंतर्राष्ट्रीय) बढ़ रही है । ये विषमताएं पूंजीवाद का एक विशिष्ट गुण है । इन विषमताओं और शोषण से ही पूंजी संचय को बढ़ावा मिलता है । वैश्वीकरण ने इस पूंजी संचय , शोषण और विषमताओं को नई ऊँचाइयों पर पहुँचाया है ।

भारत जैसे देशों को विकास का जो पाठ पढ़ाया गया है और जिस पर यहाँ की सरकारें मुस्तैदी से अमल कर रही हैं , उसके दो केन्द्रीय तत्त्व हैं जो वैश्वीकरण की नई व्यवस्था के अंग हैं - (१) विदेशी पूंजी और विदेशी कंपनियों के आने से देश का विकास होगा और (२) निर्यात बढ़ाने से देश का विकास होगा । दोनों से वास्तव में दुनिया के गरीब देशों का शोषण और उनकी बदहाली बढ़ती है ।

' निर्यात आधारित विकास ' का जो पाठ एक साथ सभी गरीब विकासशील देशों को पढ़ाया जा रहा है । अपना निर्यात बढ़ाने के लिए वहाँ की सरकारें विदेशी कम्पनियों को बुला रही हैं , अनुदान , सुविधाएं और करों में छूटें दे रही हैं , ' विशेष आर्थिक क्षेत्र ' बना रही हैं । लेकिन एक साधारण-सा सत्य वे भूल जा रही हैं । जब सारे देश एक साथ अपना निर्यात बढ़ाने की प्रतिस्पर्धा करते हैं , तो जाहिर है कि सबका निर्यात एक साथ नहीं बढ़ सकता । एक-दूसरे की कीमत पर ही उनका निर्यात बढ़ सकता है । नतीजा यह होता है कि उनके निर्यात तो विशेष नहीं बढ़ते , लेकिन इस आपसी प्रतिस्पर्धा से उनकी निर्यात-वस्तुओं के दाम जरूर गिर जाते हैं ।

व्यापार-शर्तें उनके खिलाफ होती जाती हैं और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार उनके शोषण का एक जरिया बन जाता है । निर्यात बढ़ाने के चक्कर में यह भी होता है कि गरीब देश अपनी गरीब जनता की जरूरतों की उपेक्षा करके अपने संसाधन निर्यात के

लिए उत्पादन में लगा देते हैं ।

कई बार इन देशों को अमीर देशों की प्रतिस्पर्धा का सामना भी करना पड़ता है , जो विशाल अनुदान देकर अपना कोई खास माल सस्ता बेचकर उसके बाजार पर कब्जा करना चाहते हैं । तब अमीर देश अंतर्राष्ट्रीय बाजार ही नहीं , गरीब देशों के घरेलू बाजार पर भी कब्जा कर लेते हैं । इसका बढ़िया उदाहरण अनाज एवं कृषि-उपज है । जब से 'नाफ्टा' (उत्तर अमरीका मुक्त व्यापार समझौता) लागू हुआ , मेक्सिको के मक्का पैदा करने वाले लाखों किसान बरबाद हो गए । अफ्रीका के कपास पैदा करने वाले किसानों के साथ भी यही हुआ और भारत के तिलहन , कपास , रबर , कॉफी आदि के किसान भी इसके शिकार हुए हैं ।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कैसे गरीब देशों के शोषण का जरिया बनता है , इसका एक माध्यम विनिमय दरें भी हैं । जब भारत में नब्बे के दशक के प्रारम्भ में वैश्वीकरण ने दस्तक दी , तब डॉलर और रुपए की विनिमय दर एक डॉलर बराबर नौ-दस रुपए के लगभग थी । आज एक डॉलर ४६-४७ रुपए के लगभग हो गया है । यानी विनिमय दर में लगभग पांच गुना परिवर्तन हुआ है । रुपए के मुकाबले डॉलर पांच गुना मंहगा हो गया है । इसका मतलब है हमारे निर्यातों के बदले में पहले से कम डॉलर मिलते हैं और आयातों के बदले पहले से ज्यादा रुपयों का भुगतान (या उतने रुपयों की वस्तुओं का निर्यात)

करना पड़ता है । इसका यह भी मतलब है डॉलर में लिए गए विदेशी ऋण निरंतर मंहगे होते जा रहे हैं और भारत को ब्याज के अतिरिक्त उनके बढ़े हुए मूल्य का भी भुगतान करना पड़ता है । भारत में मंहगाई या मूल्य वृद्धि की दरों का हिसाब लगा लें , तो भी डॉलर-रुपए की विनिमय दर में इतनी ज्यादा वृद्धि का कोई औचित्य नहीं बनता । 'क्रयशक्ति क्षमता' (Purchasing Power Parity) की दृष्टि से देखें , तो यह विनिमय दर एक एक डॉलर = दस रुपए से ज्यादा नहीं होनी चाहिए ।

इसका मतलब यह भी है कि मुक्त व्यापार और विनिमय के अर्थशास्त्र के जिन सिद्धान्तों की दुहाई दी जा रही है , विनिमय दरें उससे तय नहीं होती हैं ।संयुक्त राज्य अमरीका की सैनिक , राजनैतिक और आर्थिक ताकत के कारण डॉलर की विनिमय दर कृत्रिम रूप से काफी ऊँची बनी हुई है । इसका लाभ उठा कर अमरीका पूरी दुनिया को लूट रहा है । इसीलिए लगातार घाटे के व्यापार (निर्यात कम , आयात ज्यादा) में उसे कोइ नुकसान नहीं है और इसीलिए दुनिया का सबसे अधिक विदेशी ऋण वाला देश बनकर बैठने से भी उसके लिए कोई संकट पैदा नहीं होता । चूंकि डॉलर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा है , डॉलर का वर्चस्व है , डॉलर की विनिमय दर कृत्रिम रूप से ऊँची बनी हुई है , उसकी पांचों अंगुलियाँ घी में और सिर कढ़ाही में है ।

तो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार दरअसल अंतर्राष्ट्रीय लूट और शोषण का माध्यम है । उपनिवेशों के आजाद होने के बाद यह दुनिया

को लूटने की नव-औपनिवेशिक , नव-साम्राज्यवादी व्यवस्था का प्रमुख तंत्र है I इसके माध्यम से यूरोप - अमरीका आदि पूरी दुनिया के संसाधनों का इस्तेमाल अपने फायदे के लिए करते हैं और दुनिया के गरीब और दुनिया के गरीब देश और कंगाल तथा 'अविकसित' होते जाते हैं I 'मुक्त व्यापार' की व्यवस्था बनाने का मतलब शोषण और लूट के इस तंत्र को बिना रुकावट के पूरी आजादी से काम करने देना है I विश्व व्यापार संगठन तथा द्विपक्षीय या क्षेत्रीय व्यापार समझौते इसके प्रमुख औजार हैं I यही वैश्वीकरण का असली चेहरा है I

वैश्वीकरण के इस असली प्रयोजन को छिपाने - ढकने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मदद और अंतर्राष्ट्रीय कर्ज का नाटक किया जाता है I इसे वैश्वीकरण का 'मानवीय चेहरा' कहा जा सकता है I किंतु थोड़ी सी जांच-पड़ताल से स्पष्ट हो जाता है कि इस अंतर्राष्ट्रीय सहायता और कर्जों के साथ हमेशा शर्तें जुड़ी होती हैं , जोगरीब देशों की सरकारों की नीतियों में ऐसे बदलाव करने को मजबूर करती है , जिनसे मुक्त व्यापार की लूट बढ़ती है व अंतत: अमीर देशों और उनकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित पूरे होते हैं I कई बार अंतर्राष्ट्रीय सहायता व कर्जों का राजनैतिक इस्तेमाल किया जाता है I

उदाहरण के लिए , विगत जुलाई में जी-आठ (बड़े आठ) देशों की एक बैठक गरीब अफ्रीका की मदद के लिए हुई। इस के अंत में बड़ी धूमधाम से अफ्रीकी देशों पर ४० अरब डॉलर का

कर्ज माफ करने तथा २५ अरब डॉलर की मदद देने की घोषणा की गई । लेकिन , तफसील में जाने से पता चलता है कि यह कर्ज माफी अगले चालीस वर्षों जाकर होगी तथा कर्ज माफी और मदद के साथ कई प्रकार की शर्तें जुड़ी हैं जो स्वयं अफ्रीका की कंगाली और बरबादी के लिए जिम्मेदार हैं । एक अध्ययन में अनुमान लगाया है कि सहारा क्षेत्र के अफ्रीकी देशों में पिछले बीस वर्षों में व्यापार के उदारीकरण के कारण हि २७२ अरब डॉलर का नुकसान राष्ट्रीय आय में हुआ है । तो यह मदद व कर्ज गरीब देशों के लिए बहुत मंहगे साबित होते हैं और उन्हें हमेशा के लिए गरीब , अविकसित , शोषित रखने का एक माध्यम होते हैं ।

" भारतीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र विदेशी पूंजी के लिए खुले हैं । आप आएं और हमारे देश में निवेश करें । " प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने १० अक्टूबर २००६ को लंदन में कहा । सचमुच ही , देश की अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र के सारे दरवाजे विदेशी कंपनियों के लिए खोल दिए गए हैं । एक के बाद एक केन्द्र और प्रान्तों की सरकारें विदेशी पूंजी को बुलाने , आकर्षित करने और खुश करने की होड़ व दौड़ में लगी हैं । दशकों से चले आ रहे कानून , कायदे और नीतियाँ उनकी माँग पर उनके हितों में बदल दिए गए हैं । इसके पीछे विश्वास (या अन्धविश्वास) यह है कि विदेशी पूंजी तथा विदेशी कंपनियों के आने से ही देश का विकास हो सकेगा । इस विश्वास की हम

क्या कीमत चुका रहे हैं , इस पर काफी कुछ लिखा गया है । यहाँ कुछ उदाहरणों से हम बात स्पष्ट करना चाहेंगे ।

लगभग पाँच वर्ष पहले की बात है । भारतीय शेयर बाजार में कारोबार करने वाली कुछ विदेशी कंपनियों की जाँच भारतीय आयकर अधिकारियों ने शुरु की । इन कंपनियों ने अपना पता व पंजीयन मारीशस का बताया था , लेकिन ऐसा समझ में आ रहा था कि ये कंपनियाँ वास्तव में मारीशस की नहीं हैं । सिर्फ भारत - मारीशस के बीच दोहरा करारोपण न लगाने के समझौते का लाभ उठाने के लिए उन्होंने मारीशस में दफ्तर खोला है तथा वे अरबों रुपए के टैक्स की चोरी कर रहीं हैं ।जैसे ही यह जाँच शुरु हुई , इन कंपनियों में हडकम्प मच गया । उन्होंने धमकी दी कि वे भारतीय शेयर बाजार से अपनी पूंजी निकालकर वापस ले जायेंगी । शेयरों के सूचकांक गिरने लगे । तब भारत सरकार के वित्त मंत्री ने इन कंपनियों के दबाव में आकर यह जाँच रुकवा दी । सब कुछ वापस सामान्य हो गया , शेयर बाजार का सूचकांक वापस अपनी जगह पर आ गया और विदेशी कंपनियों की अरबों रुपयों की कर -चोरी पहले की तरह यथावत चलने लगी ।

इस एक घटना से वैश्वीकरण व्यवस्था के चक्रव्यूह और उसकी मजबूरियों का पता चलता है । कहा जाता है कि वित्तमंत्री यशवंत सिन्हा की पुत्रवधु भी ऐसी ही एक कंपनी में काम करती थी । लेकिन बात सिर्फ भ्रष्टाचार की नहीं है । विदेशी

पूंजी के लिए लालायित , उसके आगमन की आंकड़ों और शेयर बाजार के सूचकांक को ही अपनी सफलता की कसौटी मानने वाली , विदेशी पूंजी की कृपा पर निर्भर , किसी भी गरीब देश की कोई भी सरकार इस प्रकार उनकी बंधक बन सकती है ।यदि विदेशी कंपनियों के गलत-सही कारनामों को बरदाश्त नहीं किया गया , उनके ऊपर किसी प्रकार का बंधन लगाया गया या कार्रवाई की गयी , तो वे हमेशा देश छोड़कर वापस चले जाने की धमकियाँ देती हैं और सरकारें झुक जाती हैं ।

भारत में जो विदेशी पूंजी आ रही है , उसमें से लगभग आधी तो पोर्टफोलियो निवेश के रूप में शेयर बाजारों में शेयरों का सट्टा करने के लिए आ रही है । यानी वह सही मायने में देश के अन्दर तो आ ही नहीं रही और देश का उत्पादन या रोजगार बढ़ाने में उसका कोई वास्तविक योगदान नहीं होता है । शेयर बाजार में लगने वाली यह पूंजी काफी चंचल और अस्थिर होती है तथा कभी भी उसे देश छोड़कर जाने में कोई वक्त नहीं लगता है । इसे ' उड़न -छू पूंजी' कहा जा सकता है । वह कभी भी पलायन करके देश की अर्थव्यवस्था को अस्थिर कर सकती है । दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में दस वर्ष पहले जो संकट आया था , उसमें इस तरह की विदेशी पूंजी का बड़ा योगदान था । लेकिन भारत सरकार ने इससे कोई सबक नहीं सीखा है ।और अब तो वह रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता की बात कर रही है , जिससे यह खतरा और बढ़ जायेगा ।

शायद इसी तरह की गिरफ्त की मजबूरी है कि कोकाकोला और पेप्सी कंपनियों की बोतलों में नुकसान्देह स्तर तक कीटनाशक पाए जाने के बाद भी सरकार ने न तो उनका कारोबार बंद किया है और न उन पर कोई जुर्माना लगाया है । बोतलबन्द पानी का धन्धा तो विदेशी कंपनियों द्वारा इस देश की लूट का सबसे नायाब उदाहरण है । पानी देश का , पीने वाले देश के और कमाई विदेशी कंपनियों की । यही नहीं , पाँच पैसे का पानी , पचास पैसे की पैकिंग और बिक्री मूल्य दस रुपये ! इससे ज्यादा मुनाफे की दर दुनिया में और कहाँ होगी ? इससे बढ़िया लूट का धन्धा और क्या होगा ?इसके बावजूद भारत सरकार ने न केवल उसे इजाजत दे रखी है , बल्कि उसे बढ़ावा दे रही है और उसे देश की प्रगति तथा विकास की निशानी मान रही है ।

ऐसे और भी कई उदाहरण हैं । जब भारत का बीमा क्षेत्र विदेशी कंपनियों के लिए खोला गया , तब साथी किशन पटनायक ने एक सवाल उठाया था । उन्होंने कहा कि ये विदेशी बीमा कंपनियाँ विदेश से प्रारंभ में कुछ पूंजी लायेंगीं, लेकिन आखिरकार प्रीमियम तो इसी देश के लोग जमा करेंगे । यानी बचत इस देश की , पैसा इस देश के नागरिकों का और मुनाफा विदेश का ! बैंक और बीमा में विदेशी कंपनियों का प्रवेश बिल्कुल गैरजरूरी है तथा वे वे सिर्फ देश को लूटने का काम करेंगी । यही नहीं , मुनाफे और सिर्फ मुनाफे के लिए बेचैन ये

विदेशी बैंक व बीमा कंपनियाँ भारत के वित्तीय क्षेत्र को एक खास जन-विरोधी , अमीर-प्रेमी , अनैतिक तथा व सट्टात्मक दिशा में ले जा रहे हैं । वैश्वीकरण के दौर के पहले बड़े घोटाले - हर्षद मेहता वाले शेयर घोटाले - में विदेशि बैंकों की प्रमुख तथा अग्रणी भूमिका थी।लेकिन विदेशी हितों की बन्धक बनी भारत सरकार ने उनके खिलाफ कोई खास कार्रवाई नहीं की ।

एक और विदेशी कंपनी 'पोस्को' के साथ जो समझौता हुआ , वह भी विदेशी पूंजी के देश हित के खिलाफ होने की एक मिसाल है । गर्व से बताया गया कि इस कंपनी के द्वारा दुनिया का सबसे बड़ा इस्पात कारखाना उड़ीसा के तट पर लगेगा ,जो भारत में अब तक का सबसे बड़ा विदेशी पूंजी निवेश होगा । पोस्को के साथ ही मित्तल , टाटा , एस्सार आदि के साथ झारखण्ड , छत्तीसगढ़ , उड़ीसा में नए -नए करारों की धूम मची है ।लेकिन यह बात छुपा दी जाती है कि पोस्को ने अपने करार में यह शर्त भी रक्खी है कि उसके कारखाने के लिए जितने लौह अय्स्क की जरूरत होगी, उससे ज्यादा कच्चा लोहा उसे खदानों से निकालने और निर्यात करने का अधिकार होगा ।अब जरा इस बात पर गौर करें ।विकास के , अर्थशास्त्र के प्रचलित मानदण्डों के हिसाब से भी कच्चा खनिज निर्यात कर करना बेवकूफी है ।यदि इस्पात बनाकर बेचेंगे तो देश की राष्ट्रीय आय बढ़ेगी तथा देश में रोजगार मिलेगा । कच्चा खनिज निर्यात करके हम विकास व औद्योगीकरण की सारी

प्रगति को छोड़ते हुए वापस प्रारंभिक औपनिवेशिक अवस्था में पहुँच रहे हैं ,जब हम कच्चा माल निर्यात करते थे और तैयार माल आयात करते थे ।और हमें अपनी जरूरतों का तथा अपने भविष्य का कोई ख्याल नहीं है ।यदि पोस्को जैसे दो-चार करार और हो गए , तो भारत का लौह खनिज भण्डार यदि १०० साल चलने वाला था , वह ५० साल में ही खतम हो जाएगा ।

कुल मिलाकर , विदेशी पूंजी और विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ , चाहे वे शेयर बाजार में पोर्टफोलियो निवेश करने वाली हों या देश के अंदर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश करने वाली हों , असल में इस देश को पूरी तरह लूटने और चूसने के लिए आ रही हैं । वैश्वीकरण की व्यवस्था उनकी इस लूट को प्रशस्त करने तथा इसकी राह की रुकावटें दूर करने का काम करती हैं । इसका मानवीय चेहरा क्या होगा ?

ऊपर विदेशी कंपनियों की लूट के जो उदाहरण दिए हैं , उनका संबंध हमारे दो प्राकृतिक संसाधनों - पानी और खनिज - से है । प्राकृतिक संसाधनों का बाजार बनाना , उन पर से स्थानीय लोगों को बेदखल करना और देशी - विदेशी कंपनियों का नियंत्रण कायम करना , अमीर देशों की छोटी-सी अमीर आबादी के हित में उनका बेरहमी से दोहन , शोषण और विनाश करना - वैश्वीकरण के इस दौर की खासियत है ।पर्यावरण का संकट इसका सिर्फ एक खास पहलू और परिणाम है । लेकिन 'पर्यावरण - संकट ' कहने से पूरी तस्वीर

साफ नहीं होती और उसके पीछे के असली कारण उजागर नहीं होते । असल में यह प्राकृतिक संसाधनों के हक और उपयोग की लड़ाई है और उन पर पूंजीवादी-सम्राज्यवादी हमले का मसला है । ऐसा नहीं है कि यह हमला नई चीज है या अभी शुरु हुआ है । लेकिन वैश्वीकरण के इस दौर में यह हमला अचानक बढ़ गया है और इसके कारण पैदा हुए संकट भी बढ़ गए हैं । पूंजीवाद ऐसे दौर में पहुँच गया है , जब संसाधनों की उसकी भूख और विनाश की उसकी क्षमता बहुत बढ़ गयी है और जिसके बगैर वह जिंदा नहीं रह सकता है ।

आज दुनिया में जो संघर्ष हो रहे हैं , उनका प्रमुख संबंध प्राकृतिक संसाधनों की इस छीना-झपटी से है । इराक और अफगानिस्तान पर अमरीकी हमले की जड़ में वहाँ के तेल और प्राकृतिक गैस के भण्डार हैं । वेनेजुएला और बोलीविया से अमरीका के विरोध की बुनियाद में भी वही है ।नाइजीरिया में केन सारो विवा जैसी हस्तियों को फांसी , ईरान से अमरीका का टकराव , रूस व यूक्रेन का झगड़ा आदि की जड़ में भी पेट्रोल है ।अमरीकी लोगों की प्रति व्यक्ति तेल खपत दुनिया में सबसे ज्यादा है ।वे अपना तेल भण्डार बचाते हुए पूरी दुनिया के तेल पर अपना नियंत्रण रखना चाहते हैं । इसके लिए वे किसी भी हद तक जा सकते हैं , किसी भी देश को रौंद सकते हैं और हजारों-लाखों इंसानों का कत्ल कर स्कते हैं।वैश्वीकरण का एक वीभत्स, क्रूर तथा साम्राज्यवादी चेहरा इराक व

अफगानिस्तान में स्पष्ट दिखाई देता है ।

भारत में आज जो संघर्ष और आंदोलन चल रहे हैं , उनका भी संबंध प्राकृतिक संसाधनों से ही है । नर्मदा बचाओ ,हरसूद ,महेश्वर ,टिहरी,तवा , पोलावरम , कलिंगनगर , काशीपुर , लांजीगढ़ , प्लाचीमाड़ा , मेंहदीगंज , कालाडेरा ,दादरी , चिपको , श्रीगंगानगर , जम्बूदीप , चिलिका , बालियापाल , गंधमार्दन , नगरनार आदि की लड़ाई अंतत: जल , जंगल , जमीन , खनिज , मछली आदि प्राकृतिक संसाधनों की लड़ाई है । प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा किए बगैर तथा उनका विनाश किए बगैर पूंजीवादी विकास या वैश्वीकरण का रथ अब आगे नहीं बढ़ सकता । इसके लिए किसानों , आदिवासियों ,मछुआरों , पशुपालकों , ग्रामवासियों को बड़े पैमाने पर विस्थापित किया जा रहा है ।वैश्वीकरण और विस्थापन का चोली-दामन का साथ है।

किशन पटनायक एक ऐसे विचारक थे , जिन्होंने इस लूट व विनाश पर बुनियादी सवाल उठाए । जैसे काशीपुर व लांजीगढ़ के सन्दर्भ में उन्होंने सिर्फ आदिवासियों के विस्थापन का ही विरोध नहीं किया,उन्होंने यह भी सवाल उठाया कि आखिर इतने बाक्साइट खनन की जरूरत क्या है और एल्युमिनियम का इतना ज्यादा उत्पादन किसके लिए होगा ? यदि यह एल्युमिनियम निर्यात होकर अमरीका-यूरोप के विमानों तथा अस्त्र-शस्त्रों में काम आएगा , तो इसे हम भारत का विकास

कहेंगे क्या ?उनके भोग - विलास तथा उनकी साम्राज्यवादी जरूरतों के लिए हम अपना जंगल क्यों नष्ट करें , अपने आदिवासियों को क्यों उजाड़ें और अपना खनिज भण्डार क्यों लुटायें ?क्या ज्यादा खनिज उत्पादन हमेशा विकास व प्रगति का पर्यायवाची होगा ?

किशन पटनायक ने पानी के बाजार पर भी सवाल उठाया । वैश्वीकरण के उन्मुक्त बाजारवाद ने पानी जैसी सर्वसुलभ चीज को भी नहीं छोड़ा और उसे बहुराष्ट्रीय मुनाफे का सबसे बढ़ता हुआ कारोबार बनाने का कमाल करके दिखाया । बोतलबंद पानी तथा कोक-पेप्सी इस लूट का हिस्सा है । लेकिन विश्व बैंक , एशियाई विकास बैंक , अफ़्रीकी विकास बैंक आदि के द्वारा गरीब देशों को पेयजल , शहरी विकास , सिंचाई आदि के जो कर्ज दिए जा रहे हैं , जो ऊपर से मानवीय परियोजनाएं दिखाई देती हैं , उनमें सब में शर्त होती है कि पानी की दरें बढ़ाई जाएं ,पूरी लागत-वसूली हो और धीरे -धीरे पानी की आपूर्ति का काम निजी कंपनियों को दिया जाए । (ऐसी ही शर्तें बिजली ,सड़क , शिक्षा हर क्षेत्र की परियोजनाओं में होती हैं) । सरकार किसी भी प्रकार का अनुदान न दे (या देना हो तो कंपनियों को दे) और हस्तक्षेप न करे । जहाँ-जहाँ विश्व बैंक व एशियाई विकास बैंक की योजनाएं लागू हुई हैं वहाँ पानी की दरें बहुत तजी से बढ़ी हैं और निजी कंपनियों ठेकए दिए गए हैं- वह चाहे भारत का दिल्ली हो , बोलिविया का कोचाबाम्बा हो

या दक्षिण अफ़्रीका का केपटाउन हो ।पानी के इस निजीकरण का अंतत: सीधा मतलब होता है कि बढ़ी हुई दरों पर जो पैसा दे सकेगा ,उसे ही पानी मिलेगा । पैसा नहीं तो पानी नहीं ।गरीब लोग पनी से भी वंचित हो जाएंगे ।इससे अधिक क्रूर व अमानवीय व्यवस्था और कोई नहीं हो सकती । पूरे मानव इतिहास में कभी ऐसा नहीं हुआ कि इंसानों को पानी जैसी चीज से वंचित किया गया हो।जिस मध्ययुग को बर्बरयुग कहा जाता है , उसमें भी ऐसा नहीं हुआ था । वैश्वीकरण का यह युग मानव इतिहास का सबसे बर्बर युग है ।

अमर्त्य सेन , जोसेफ स्टिगलिट्ज़ आदि कहते हैं कि साक्षरता , शिक्षा , स्वास्थ्य , तकनालाजी आदि पर सरकार पर्याप्त खर्च करे व ध्यान दे तो वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया को मानवीय बनाया जा सकता है और सब लोग इसका लाभ उठा सकते हैं । जो लोग इस प्रक्रिया के शिकार होंगे , उनके लिए सामाजिक सुरक्षा तंत्र (safety nets) बना दिए जाएं। लेकिन कैसे ? यह कहने का मतलब वैश्वीकरण के लूट , शोषण व विनाश के बुनियादी आधार को नजरअंदाज करना है , दुनिया में विभिन्न हितों में बुनियादी टकराव को अनदेखा करता है तथा एक विश्लेषण-रहित कोरे आशावाद(wishful thinking) का सहारा लेना है । यह वैसा ही है , जैसा कि शेर के आगे मेमने को डाल दिया जाए और यह उम्मीद की जाए कि शेर संत बन जाए व मेमने को न खाए । इसमें दो तथ्य ध्यान देने लायक हैं ।

(१) वैश्वीकरण का , नवउदारवादी अर्थशास्त्र का तथा विश्व बैंक , अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि का गरीब देशों की सरकारों पर लगातार दबाव है कि वे अपने बजट का घाटा कम करें और गरीबों को अनुदान कम करें । इन नवउदारवादी नीतियों में करों से सरकार का राजस्व बढ़ाने का विकल्प नहीं है क्योंकि अमीरों व कंपनियों को लगातार करों में छूटें दी जा रही हैं । अब तो विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) जैसे कर मुक्त स्वर्ग बनाए जा रहे हैं । ऐसी हालत में शिक्षा , स्वास्थ्य , राशन , सार्वजनिक सुविधाओं पर खर्च लगातार कम हो रहा है और सरकार अपनी जिम्मेदारियों से मुंह मोड़ती जा रही है । भारत में तो 'वित्तीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन अधिनियम ' बनाकर भारत सरकार ने स्वयं अपने हाथ बांध लिए हैं । इस कानून के तहत भारत सरकार को लगातार अपने बजट घाटे को कम करते हुए पाँच साल में उसे शून्य पर पहुंचाना है । यह बिल्कुल गैरजरूरी , गलत एवं बेवकूफी है ।

(२) दूसरी ओर , वैश्वीकरण का पूरा जोर शिक्षा , स्वास्थ्य आदि का भी बाजार विकसित करने पर है । पानी के बाजार की भांति यह भी गरीबों व जनसाधारण के खिलाफ जाता है । बहुत तेजी से शिक्षा व स्वास्थ्य का निजीकरण हो रहा है । शिक्षा व इलाज मंहगे होते जा रहे है ।कोचिंग का मंहगा बाजार तेजी से विकसित हो रहा है । निजी कॉलेजों , विश्वविद्यालयों और शिक्षा संस्थाओं की बाढ़ आ गयी है । डोनेशन का रेट

बढ़ता जा रहा है।देशी तथा विदेशी कंपनियां भी शिक्षा के इस बाजार में कूद रही हैं । यहाँ तक सरकार की नीतियाँ भी पूंजीपति व कंपनियाँ बना रही हैं । कुछ समय पहले भारत सरकार ने शिक्षा में सुधार लाने के लिए 'अम्बानी-बिड़ला समिति' बनाई थी , जिसने अपनी रपट भी दी है । यह कमाल वैश्वीकरण के जमाने मे ही हो सकता है कि शिक्षा के बारे में कमेटी शिक्षाविदों या विशेषज्ञों की नहीं पूंजीपतियों और बड़े बनियों की बनाई जाए , जिनके लिए मुनाफे को छोड़कर कोई मूल्य नहीं होते ।इसी प्रकार जिस परिषद के सारे के सारे सदस्य देश के बड़े पूंजीपति हों , उनमें एक भी बुद्धिजीवी , अर्थशास्त्री , प्रशासक , किसानों या मजदूरों का प्रतिनिधि न हों , फिर भी उसे हम उत्तरप्रदेश को लूटने की परिषद न कहकर 'उत्तरप्रदेश विकास परिषद' कहें - यह भी वैश्वीकरण का कमाल है ! पहले के युग में हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे ।

जब शिक्षण संस्थाएं शिक्षा की दुकानें बन जाएं,अस्पताल मरीजों को लूटने के अड्डे बन जाएं , चिकित्सक के पवित्र कार्य पर पैसा कमाने का जुनून पूरी तरह हावी हो जाए - तो इसे किसी भी तरह से प्रगति नहीं कहा जा सकता । यह तो अध:पतन है । इसी प्रकार संस्कृति , कला , साहित्य , पत्रकारिता सबका तेजी से बाजार बन रहा है । सब 'बाजारू' बन रहे हैं । मुनाफे और पैसे की इस बाजारू दुनिया में मानव-मूल्यों व मानवीयता की जगह दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही

है ।

वैश्वीकरण के पैरोकार कई बार चीन का उदाहरण देते हैं । चीन ने अब माओ और साम्यवाद का रास्ता लगभग पूरी तरह छोड़ दिया है । ' बाजार समाजवाद ' की जो बात वह करता है , वह पूंजीवाद और वैश्वीकरण की राह ही है । चीन विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बनने के लिए बेचैन है , वह भारत से कई गुना ज्यादा विदेशी पूंजी आकर्षित कर रहा है , उसकी राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर ल्गातार लंबे अरसे से नौ - दस प्रतिशत बनी हुई है , उसके निर्यात तेजी से बढ़ रहे हैं और भारत सहित दुनिया के बाजारों में चीनी वस्तुएं छाई हुई हैं । तीसरी दुनिया के देश कैसे वैश्वीकरण की राह पर चलकर आगे बढ़ सकते हैं , इसकी नवीनतम मिसाल चीन है । इसके पहले अर्जन्तीना , चिली , मेक्सिको , दक्षिण-पूर्वी एशिया आदि का उदाहरण दिया जाता था , लेकिन वे सारे मॊडल एक - एक करके धराशायी हो गए ।

चीन के बारे में भी तस्वीर का एक ही पहलू हमें दिखाया जाता है । असलियत यह है कि चीन की ज्यादातर नयी औद्योगिक समृद्धि हांगकांग आदि से लगे उसके दक्षिणी व पूर्वी तटीय इलाकों तक सीमित है ।चीन की विशाल मुख्य भूमि में तो बेकारी और कंगाली छाई हुई है और बड़ी संख्या में पलायन हो रहा है ।बड़ी मात्रा में विस्थापन भी हो रहा है ।आमदनी की विषमता भारत से भी ज्यादा हो चुकी है । कारखानों और

खदानों में काम की दशाएं बहुत खराब हैं । खदानों में दुर्घटनाओं की दर पूरी दुनिया में संभवत: सबसे ज्यादा है । पूरे चीन में जबरदस्त जन असंतोष खदबदा रहा है , जो तानाशाही के कारण दबा कर रखा गया है । वर्ष २००५ में पूरे चीन में लगभग ८५००० जन-प्रदर्शन हुए , यह आंकड़ा स्वयं चीन सरकार के सार्वजनिक सुरक्षा मंत्रालय का है । भविष्य में स्थिति और बिगड़ सकती है ।इसलिए चीन सरकार ने पिछले दिनों गरीबी , बेरोजगारी और सामाजिक सुरक्षा पर कुछ ध्यान देने की कोशिश की है और सरकारी बजट में कुछ घोषणाएं की हैं ।लेकिन यदि चीन की राह वही रही , तो इससे हालात ज्यादा बदलने वाले नहीं हैं, क्योंकि वैश्वीकरण की राह से और ज्यादा शोषण , कंगाली , विस्थापन तथा बेरोजगारी का सृजन होता जाएगा ।

दूसरे शब्दों में , चीन का उदाहरण भी यही साबित करता है कि ‘ बाजार समाजवाद ‘ अपने आप में एक विरोधाभास है । बाजारवाद और समाजवाद साथ-साथ नहीं चल सकते । वैश्वीकरण की इस दुनिया में सबके लिए जगह नहीं है । विकास होगा तो चीन जैसा होगा । कुछ की समृद्धि होगी , बाकी के हिस्से में कंगाली , बदहाली , बेरोजगारी और विस्थापन की त्रासदी आएगी । दरअसल , बहुसंख्यक लोगों के शोषण और विनाश पर ही कुछ लोगों का ऐशोआराम टिका है । पूंजीवादी औद्योगीकरण की प्रकृति ही ऐसी ही है वह पूरी

दुनिया के संसाधनों को लूटते और बरबाद करते आगे बढ़ता है । पहले यह लूट उपनिवेशों में होती थी , बाद में नव औपनिवेशिक तरीके विकसित हो गए । बाहरी उपनिवेशों के साथ-साथ देश के अन्दर आंतरिक उपनिवेश विकसित हुए । बिना औपनिवेशिक (या नव-औपनिवेशिक) लूट के पूंजीवाद की गाड़ी चल नहीं सकती । वैश्वीकरण इस पूंजीवाद व साम्राज्यवाद का ही एक नया , ज्यादा भयानक दौर है । इस सत्य को हम पहचान लेंगे , तो इसका मानवीय चेहरा ढूंढने या इसके बीच का कोई रास्ता ढूंढने का निरर्थक प्रयास छोड़ देंगे ।

किशन पटनायक की खासियत यह थी कि इस सत्य को उन्होंने बहुत पहले पहचान लिया था और इसके बारे में बराबर चेतावनी देते रहे । इस मामले में उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकेगा ।

समाजवादी जनपरिषद

http://samatavadi.wordpress.com/

द्वारा प्रकाशित

प्रतुतीकरण

www.cafehindi.com